सरकारी सेवाओं में किसान–संतान के लिए पचास प्रतिशत आरक्षण क्यों?

१९४७

चौधरी चरण सिंह

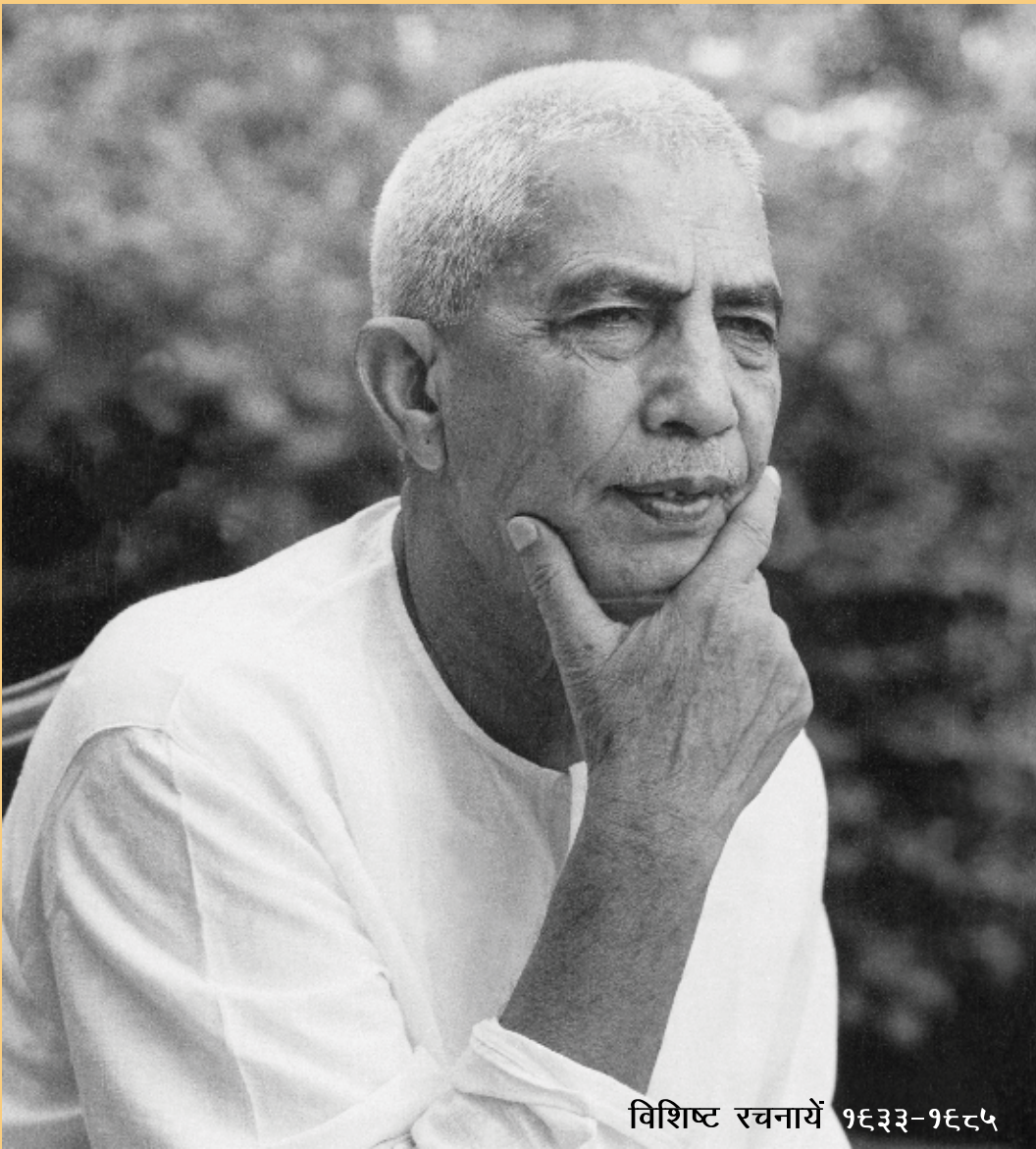

विशिष्ट रचनायें १९३३–१९८५

२६ जनवरी २०२२
चरण सिंह अभिलेखागार द्वारा प्रकाशित
www.charansingh.org
info@charansingh.org

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन को केवल पूर्व अनुमति के साथ
पुनः प्रस्तुत, वितरित या प्रसारित किया जा सकता है।
अनुमति के लिए कृपया लिखें info@charansingh.org

अक्षर तथा आवरण संयोजन राम दास लाल
सौरभ प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड, ग्रेटर नोएडा, भारत द्वारा मुद्रित।

चरण सिंह के पिता मीर सिंह तथा माता नेत्र कौर, १९५०

चरण सिंह का जन्म २३ दिसंबर १९०२ को "एक साधारण किसान के यहां छप्पर छवाये मिट्टी की दीवारों से बने घर में हुआ था, जहां आंगन में एक कुंआ था, जिसका पानी पीने और सिंचाई के काम आता था।"* संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) के मेरठ जिले के नूरपुर गांव में एक पट्टेदार गरीब किसान की कच्ची मढ़ैया में पैदा हुआ यह शिशु आज़ाद भारत में देहात की बुलंद आवाज बना।

* चरण सिंह के अपने शब्दों में

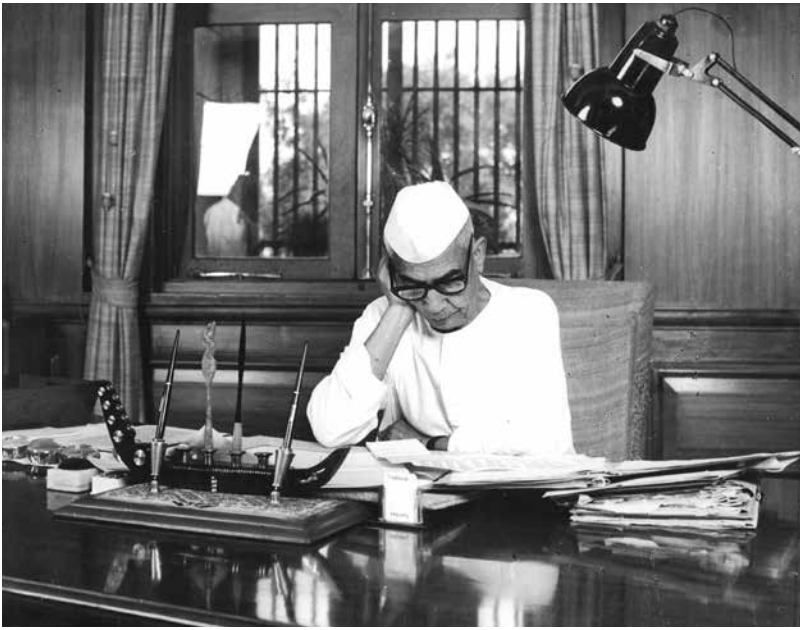

चौधरी चरण सिंह
भारत के प्रधान मंत्री। दिल्लीं, १९७९

ग्रामीण भारत के जैविक बुद्धिजीवी

१
सरकारी सेवाओं में किसान–संतान के लिए पचास प्रतिशत आरक्षण क्यों?

"एक ग्रामीण या किसान की समस्याओं को वही अधिकारी–व्यक्ति हल कर सकता है, जिसकी सोच वस्तुओं के प्रति किसान जैसी ही हो।" इस चिंतन के आधार पर चौधरी चरणसिंह ने १९३९ में उत्तर प्रदेश की नव–निर्वाचित धारा सभा में एक प्रस्ताव रखा, जिसमें ५० प्रतिशत उच्च प्रशासनिक पद खेतिहर अथवा गांवों के निवासियों के लिए आरक्षित करने की बात कही गयी थी, पर शोषक व्यवस्था ने इस प्रस्ताव पर कोई विचार नहीं किया। बाद में १९४७ में उन्होंने विषय की महत्ता को सिद्ध करते हुए लेख लिखा– 'किसान संतान को ५० प्रतिशत आरक्षण क्यों?

सन् १९३१ की जनगणना के अनुसार वे लोग जो वास्तव में खेती के काम में लगे हैं–वे चाहे भूमि के मालिक हों अथवा काश्तकार–उन लोगों से अलग हैं जो या तो श्रमिक हैं या पूरी तरह अथवा सिद्धान्त रूप में ज़मीन के लगान से जीविका कमाते हैं। ये काश्तकार अथवा ज़मीन के मालिक ही हमारे प्रदेश की बड़ी जनसंख्या का भाग हैं, अर्थात् ५७.७५ प्रतिशत हैं। इनमें जब कृषि–मजदूरों को शामिल कर लिया जाता है, तब वे ७५.५ प्रतिशत हो जाते हैं। सन् १९४१ की जनगणना में पेशेवर आंकड़े एकत्र नहीं किये गये थे, फिर भी यह विश्वास किया जा सकता है कि १९३१ की अपेक्षा। इन आंकड़ों में कोई ठोस परिवर्तन नहीं हुआ होगा। इसलिए यथार्थ में संयुक्त–प्रदेश में खेती में लगे वर्ग को ही जनता कहा जा सकता है। सरकार के समस्त विभागों का निर्माण इसी जनता के हितों को पूरा करने के लिए किया गया है। जनसंख्या का इतना बड़ा भाग होने के कारण, कोई भी व्यक्ति यह सोच सकता है कि उत्तर–प्रदेश

की सरकारी नौकरियों का प्रबन्ध, किसानों के बेटों द्वारा किया जाता होगा अथवा सरकारी नौकरियों में उनकी संख्या, उनकी जनसंख्या के अनुपात के हिसाब से होगी, लेकिन ऐसा बिल्कुल नहीं है। सरकारी–सेवकों के आंकड़े उनके अभिभावक या पिताओं के पेशे के आधार पर उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु यह बात बिना किसी विरोधाभास के कही जा सकती है कि उनका अनुपात, सैनिक–सेवाओं के अतिरिक्त, किसी भी हालत में १० प्रतिशत से अधिक नहीं है।

> आंकड़ों पर आधारित तर्क भी ध्यान में रखने योग्य है। अधिक महत्त्वपूर्ण और यह बात कहने के लिए विवश करने वाला विचार, मैं, यह समझता हूं कि किसानों और उस वर्ग के बीच, जो सरकारी सेवाओं के लिए अधिकारी तथा दूसरे पदों के लिए कर्मचारियों का चयन करता है, सहानुभूति का अभाव अथवा विरोध विरासत से मिलता है। एक व्यक्ति के विचार उसके वातावरण के आधार पर बनते हैं। शिक्षा से उनमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता, कभी–कभी वह उनको और मजबूत बनाती है। एक व्यक्ति का जीवन के प्रति दृष्टिकोण उसके मां–बाप, उसका वातावरण, उसका व्यवसाय, अतीत में उसके कार्य, उसके वर्तमान के मित्र, परिचित और रिश्तेदार आदि बनाते हैं। साइमनहैरी का कथन है, "एक व्यक्ति के सामाजिक दर्शन का निर्माण उस समाज के प्रभाव से होता है, जिसमें कि वह रहता है; एक कन्जर्वेटिव एम० पी० अपने सम्बन्ध लिमिटेड कम्पनीज के डायरेक्टर्स, अपने क्लब के अपने समान मालदार सदस्यों और शिकार, निशानेबाजी तथा मछली मारने आदि कामों के शौकीन अपने साथियों के साथ रखता है। यह वह समाज है, जो उसके अनुदार विचार या दर्शन का निर्माण करता है। उसकी जिन्दगी के तौर–तरीकों से यह बात सम्भव प्रतीत नहीं होती कि वह आम आदमी की वास्तविक समस्याओं को समझ सकेगा, उसकी राजनीतिक विचारधारा निश्चित रूप से उसके वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, जिससे उसका उद्‌गम हुआ हैं।"
>
> (वाइड पौरी, एम० पी० पृष्ठ–१९३)

हमारे देश में वे जातियां, जिनके वंशज सरकारी सेवाओं में अधिकार जमाये हुए हैं, प्रायः वे हैं, जिनको अंग्रेजों द्वारा अप्रत्याशित महत्त्व और ख्याति प्रदान की गयी थी। इनमें साहूकार, बड़े–बड़े जमींदार, ताल्लुकेदार, आढ़ती, व्यापारी अथवा वे लोग हैं, जो प्रायः इन लोगों द्वारा शामिल किये गये हैं, जिनमें वकील, डाक्टर और ठेकेदार आते हैं। इन

जातियों ने अंग्रेजों की अधीनता में पिछले २०० वर्षों में जनता का हर प्रकार से शोषण किया था। इन वर्गों के हित और विचार, पूर्णतः स्पष्ट रूप से, जन–समाज के विरोधी हैं। शहर निवासी गैर–कृषि समाज के व्यक्ति का सामाजिक दर्शन, देहात के किसान–समाज में पैदा हुए व्यक्ति से पूर्णतः भिन्न होता है।

पंजाब की एक एसोसिएशन द्वारा स्टेच्युअरी कमीशन को दिया गया एक प्रतिवेदन कहता है, "भारत में शहर और कस्बों में रहने वाले व्यापारी वर्ग तथा खेतिहर जातियों में एक बहुत बड़ी दरार है।" तत्पश्चात् उसने आयोग पर समस्त संभावित बल के साथ, यह प्रभाव डालने का प्रयास किया कि "शहरी मध्यम वर्ग, जो पैसा उधार देने वाले वर्ग के बहुत नजदीक है अथवा उसका अंग है, कृषक–वर्ग के साथ कोई सहानुभूति नहीं रखता; और यह कि दोनों वर्गों के हित परस्पर सीधे विरोधी हैं। इस प्रकार की शिक्षा पाया हुआ शहरी मध्यम वर्ग, किसान वर्ग को केवल खेत जोतने के योग्य ठहराता है; खाद्यान्न उत्पादन के योग्य मानता है। सरकार को राजस्व देने के उपयुक्त सोचता है, अपने उद्देश्यों की पूर्ति का माध्यम समझता है और हर प्रकार से शोषण का आधार समझता है।" कुछ लोगों के कानों को प्रतिवेदन की भाषा कुछ कठोर लग सकती है किन्तु इस बात का कोई खंडन नहीं है कि शहरी लोग, किसान वर्ग की अपेक्षा स्वयं को बहुत ऊंचा मानते हैं। पंजाब एसोसिएशन का विचार सही है।

इस बात का प्रमाण यह तथ्य पेश करता है कि एक दिन मैं सरकारी सेवाओं में किसान वर्ग के लिए अधिक स्थानों की मांग–विषयक अपने विचार के बारे में उत्तर–प्रदेश के एक बड़े शहर से आये विधायक से बात कर रहा था, तो उनकी तुरन्त प्रतिक्रिया थी– "तब खेतों में हल कौन चलायेगा?" प्रायः देखा जाता है कि शहर में पला गैर–किसान वर्ग का व्यक्ति गांव के एक गरीब भारतीय को देहाती, गंवार, दहकानी आदि उसी घृणाभरे स्वर में पुकारता है, जिसमें स्वर्ग से सीधा आया अंग्रेज, हम समस्त भारतीयों को बिना किसी भेदभाव के, नेटिव तथा निगर कहकर पुकारता था।

इस सच्चाई को मानना पड़ेगा कि जिस वातावरण में देहात का कामगार रहता है, वह शहर के वातावरण से भिन्न होता है। "खेती एक विशेष प्रकार का नागरिक, दिमाग, एक विशेष रुझान तथा जीवन की एक विशेष दिशा उत्पन्न करती है।" और यह किसी औद्योगिक व्यवस्था द्वारा उत्पन्न की गई दिशा, रुझान तथा विचार से अलग होती है। काउण्ट रिचर्ड ओडन ओ कलर्जी अपनी किताब 'टोटेलिटेरियन स्टेट अगेंस्ट मैन' में किसान के विषय में कहता है– "वह प्रकृति के बीच में, प्रकृति

के साथ, पशु और पेड़–पौधों का सहजीवी बनकर रहता है। इस कारण दुनिया के विषय में उसका अन्दाज उस शहरी आदमी से, जो प्रकृति से बहुत दूर रहता है, जो अपने अधिकांश दिन विभिन्न प्रकार की मशीनों के बीच गुजारता है और प्रायः स्वयं आधी मशीन बन जाता है, से सिद्धान्ततः बहुत भिन्न होता है। किसानों की मौसम के समान मंदगामी रफ्तार होती है, मोटर कार के समान तेज गति नहीं। संसार तथा वस्तुओं के प्रति उसका रुख सहज होता है, मशीनवत् नहीं।

"यही कारण है कि किसान–वर्ग से भरे हए देश में उस व्यक्ति, जिसने किसान जीवन के दुखद अनुभवों को भोगा है और जिसे देहाती क्षेत्र के वातावरण के अनुभव का श्रेय प्राप्त है, के अधिक सफल प्रशासक तथा कानून का व्याख्याता होने की सम्भावना है, क्योंकि अन्यों की अपेक्षा उसके जीवन के मूल्य, उन लोगों के अधिक अनुरूप होते हैं, जिनके कार–बार की व्यवस्था का दायित्व उसको सौंपा जाता है। केवल वह ही ग्रामीणों की मानसिकता को भली प्रकार समझ सकता है और उनकी आवश्यकताओं को महसूस कर सकता है। उसको किसानों के उद्देश्यों का भी ज्ञान होता है और ग्रामीण–जीवन के अभावों का भी। सरकारी सेवाओं का अनुवंशक या क्रम–परम्परागत संगठन, जैसा कि आजकल है, और जिसका निर्माण अधिकतर शहरी समाज की संतानों, दुकानदारों, साहूकारों, किराये की राशि पर निर्भर करने वालों से हुआ है, अपने सुन्दर इरादों के बावजूद, कृषि–प्रधान इस प्रदेश का शासन, जनहितों की रक्षा करते हुए नहीं चला सकता। इन वर्गों से आया अधिकारी साधारण वर्ग के समाज के साथ घुलमिल नहीं सकता और न उसके दुःख–दर्द की नब्ज को जान सकता है। गांव के रहने वाले आदमी या किसान की भावनाओं के साथ उसको कोई सहानुभूति नहीं होती। उसके समस्त हित तथा सहानुभूतियां दूसरी ओर होती हैं। ये अचेतन रूप से ही उसको ऐसा दृष्टिकोण अपनाने के लिए अनुप्रेरित करती हैं। अतः वह उसी वर्ग के हितों की रक्षा करता है, जिससे वह स्वयं आया हुआ होता है। उक्त वर्ग से आये किसी अधिकारी अथवा विधायक से यह आशा करना कि वह समस्याओं के ऐसे सही समाधान की बात सोचेगा, जिसका परिणाम उसके वर्ग–हितों की हानि हो अथवा उनको बहुत बुरी तरह प्रभावित करता हो, मानव मस्तिष्क पर अधिक बोझ डालना होगा। उत्तर प्रदेश के शिक्षा मंत्री माननीय सम्पूर्णानंद जी के इस विचार से मुझे बल मिलता है। वह कहते हैं– "न्यायाधीश तथा विधान–निर्माताओं को इरादतन अनुचित होने की

> आवश्यकता नहीं है। मनुष्य होने के नाते, वर्ग–हितों तथा जातीय सम्बन्धों द्वारा उन पर लगाई गई सीमाओं से ऊपर उठ सकना उनके लिए असम्भव होगा।" (व्यक्ति और समाज, पृष्ठ १२१–१२२)

जिन लोगों को कानूनी अदालतों का थोड़ा–सा भी अनुभव है, वे समाज के विभिन्न वर्गों से आये न्याय–अधिकारियों के रवैये तथा आचरण का अन्तर, अपने वर्ग के संदर्भ में पूरी तरह जानते हैं। समान परिस्थितियों वाले मुकदमे में ताल्लुकेदार अथवा साहूकार परिवार से आये न्यायाधीश की प्रतिक्रिया कृषि परिवार के न्यायाधीश से बहुत भिन्न होती है। जिन लोगों के पास देखने के लिए आंखें हैं, वे "दि पंजाब पीजेन्ट इन प्रोस्पेरिटी एण्ड इन डैब्ट" (डार्लिंग, १९३२) के लेखक के साथ पंजाब के सिविल कोर्ट्स द्वारा की गई बरबादी पर अवश्य दुखी होंगे। इन कोर्ट्स पर ऐसे लोगों का अधिकार था, जिनका अधिक जीवन शहरों में व्यतीत हुआ था और जो गांवों के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे और वे प्रायः सूदखोरों का पक्ष, यदि उनके साथ उनकी रिश्तेदारी नहीं है तो सजातीय होने के नाते, लिया करते थे। न्यायालयों में, विशेषतः माल के मुकदमों में, किसानों को मालूम होता था कि उनका विरोधी पल्ला बहुत भारी है, यह निश्चित है कि गैर–किसानों ने अपने वर्ग–हितों की रक्षा के लिए शासन चलाया है। मैं इस तर्क को, 'ब्रिटिश लीगल जरनल' के एक उद्धरण से पुनः प्रमाणित करना चाहूंगा–

> "यह मान्यता बड़ा बल पकड़ती जा रही है कि यदि न्यायाधीशों को अपना कार्य संतोषजनक तरीके के साथ करना है, तो उनको उस कानून का, जिसको वे लागू करते हैं, केवल व्यावहारिक ज्ञान ही नहीं होना चाहिए, वरन् जिन लोगों के मुकदमों का फैसला वे करते हैं, उनकी परेशानियों तथा समस्याओं की जानकारी भी होनी चाहिए। यह कहा जाता है कि कृषि–प्रधान जिले के न्यायाधीशों की एक बेंच, किसी खदान वाले शहर एवं किसी औद्योगिक केन्द्र पर वर्तमान परिस्थितियों को समझने में असफल हो सकती है, और समान रूप से शहर के आदमी कृषि–समुदाय की समस्याओं को समझने में चूक कर सकते हैं।"

ऊपर के निष्कर्ष गैर–न्यायिक अधिकारियों के विषय में भी सही हो सकते हैं। अनावृष्टि, बाढ़ अथवा ओलावृष्टि के कारण हुई बरबादी के विषय में नहर तथा माल–विभाग के कृषि–उद्गम तथा गैर–कृषि–उद्गम वाले अधिकारियों द्वारा समान परिस्थितियों में पेश किए गए माफी के

तखमीनों को देखने का यदि कोई कष्ट करे, तो उसको चौंका देने वाले अन्तर दिखाई पडेंगे। गैर–कृषि–उद्‌गम वाले लोग किसानों की दुर्दशा को देखने वाली आंख नहीं रखते। उनका आर्थिक आधार, उनकी सम्पूर्ण मानसिक सर्जना, सही तस्वीर पेश करने में बाधक बन जाती है। सरकार का कृषि–विभाग असफल क्यों रहा है? इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण इस तथ्य में छिपा हुआ है कि इसके अधिकारी प्रायः ऐसे लोग रहे हैं, जिनके परिवारों का कई पीढ़ियों तक, खेती के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा है, साथ ही जिनके लिए इस विभाग में आने से पहले कृषि एक सीलबन्द किताब के समान थी और यही करण है कि वे लोग अयोग्य कृषि–विशेषज्ञ रहे, उर्वर कल्पना रहित और सहानुभूतिहीन अधिकारी बने रहे। कृषि विभाग में ऐसे अधिकारी मौजूद हैं, जो गेहूं तथा जौ के पौधे में अन्तर नहीं कर सकते और नहर–विभाग में ऐसे अधिकारी हैं, जो यह नहीं जानते कि किस समय और किस फसल में कितनी बार पानी देना चाहिए? यही बात को–ऑपरेटिव तथा ग्रामीण विकास विभाग की अनेक शाखाओं की विभिन्न कार्यवाहियों के विषय में कही जा सकती है और यह देख कर दुःख होता है कि १९३७ में कांग्रेस–मंत्रिमंड़ल का शुभागमन भी इस स्थिति में कोई सुधार नहीं ला सका। यह नितांत लाभदायक हो सकता है, यदि हम शीघ्रातिशीघ्र यह समझ लें कि केवल वही व्यक्ति, जिसकी जड़ें देहात में हैं, उन तथा अन्य विभागों को सफल तथा सार्थक बना सकता है। अतः एक व्यक्ति के लिए ग्रामीण जीवन में अभिरुचि होना, सरकारी–सेवा में चयन के लिए एक मानदंड बन जाना चाहिए और सेवा में संलग्न व्यक्ति की योग्यता की कसौटी का भी यही आधार माना जाना चाहिए। माननीय कैलाशनाथ काटजू, मंत्री जस्टिस एवं को–ऑपरेटिव, द्वारा उत्तर–प्रदेश के लिए बनाई गई को–ऑपरेटिव योजना पर टिप्पणी करते हुए मि० श्रीधर मिश्र एम. ए., एम. कॉम. २९ दिसम्बर १९४६ के 'लीडर' में इस प्रकार लिखते हैं–

> "अन्त में यह कहा जा सकता है कि को–ऑपरेटिव विभाग में व्यक्तियों के चयन की प्रणाली में भी परिवर्तन की आवश्यकता है। शहर के साहब लोग, जो सम्भवतः देहात में कभी पिकनिक, अथवा स्थान–भ्रमण तथा ग्रामीण अंचल देखने के उद्देश्य से भले ही गये हों, वे शैक्षिक दृष्टि से कितने ही योग्य भले ही हों, देहात के लोगों की परेशानियों को नहीं समझ सकते, न उनका विश्वास एवं समर्थन पा सकते हैं। देहात में संलग्न समाज–सुधारक के लिए यही नितांत आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण गुण है। अतः इन सेवाओं के लिए चयन पूरी तरह उन लोगों में से

किया जाए, जिनका सम्बन्ध देहात के क्षेत्रों के साथ है और जो अब तक ग्राम–जीवन के साथ अपना सम्पर्क कायम किये हुए हैं। ये ही वे व्यक्ति हो सकते हैं, जो किसी भी ग्राम–पुनर्गठन–आन्दोलन के लिए ग्रामीण समाज में बिना किसी शंका–संदेह तथा विरोधी भावना उत्पन्न होने का मौका दिये, आन्दोलन के प्रति अनुकूल चेतना पैदा कर सकते हैं।"

मेरी दृष्टि में यह मत कि एक व्यक्ति के विचारों का निर्माण उसकी आय के स्रोतों के आधार पर होता है, उस समय अन्तिम रूप से निश्चित हो जाता है, जब यह कहा जाता है कि विगत पंजाब लेजिस्लेटिव असेम्बली के, गैर–कृषि–वर्ग अथवा शहरी क्षेत्रों से आए–कांग्रेस–दल के समस्त सदस्यों ने, मौलाना अबुल कलाम आजाद के स्पष्ट निर्देशों के बावजूद, बंधक–भूमिवापसी तथा कृषि–विपणन विधेयकों को समर्थन नहीं दिया। अपने आपको जन–सेवक तथा कांग्रेसी कहने वाले लोगों का जब यह हाल है, तो उन लोगों से क्या आशा की जा सकती है, जो न तो जन–सेवक हैं और न कांग्रेस–जन, और जो प्रायः विभिन्न विभागों में नौकरियां प्राप्त कर लेते हैं तथा उनका जीवन में एक सुनिश्चित उद्देश्य केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति एवं चेतन तथा अचेतन रूप से अपने समुदाय के हितों की रक्षा करना होता है।

इस समय, जबकि हमारे नेताओं ने ग्रामों को पुनर्जीवित करने तथा किसान एवं श्रमिक–राज्य स्थापित करने का इरादा किया है, इस हालत पर विचार कर लिया जाए। मार्क्स ने इस विचार का प्रतिपादन किया है कि 'जो वर्ग राज्य पर शासन करता है, वह हमेशा अपनी शक्ति का प्रयोग अपने वर्ग–हितों की रक्षा के लिए करेगा'। यद्यपि एक सार्वभौम सिद्धान्त के रूप में यह विचार असत्य हो सकता है, क्योंकि इस संसार में शाश्वत सिद्धान्त प्रायः नहीं होते, फिर भी मार्क्स का मत एक बड़ी सीमा तक सत्य है।

यह कथन स्वयं–सिद्ध है कि सरकार के विचार एवं नीतियों की कार्यरूप में परिणति उनसे अनुप्राणित व्यक्तियों के माध्यम से ही हो सकती है। सच बात यह है कि उद्देश्य की पूर्णता के लिए भावना का महत्त्व है, शब्दों का नहीं; शब्दों को आसानी के साथ तोड़ा–मरोड़ा जा सकता है। एक अफसर के अधिकार को, भले ही अनेक परिपत्रों, कानूनों तथा उप–कानूनों द्वारा सीमित करने का प्रयास करें, फिर भी अपने विवेक से काम करने की काफी गुंजाइश उसके पास बची रहती है। इस बात को तुरन्त स्वीकार किया जा सकता है कि एक अधिकारी का विवेक प्रायः उसकी मानसिकता तथा वैयक्तिक सम्पर्कों से अनुशासित होता है।

उसकी अभिरुचियां अथवा पक्षधरता, चेतन अथवा अचेतन रूप में, उसके अपने या अपने समुदाय के हितों से अनुप्रेरित होते हैं। इन वैयक्तिक अथवा वर्ग–सम्पर्कों की संकीर्ण चेतना के फलस्वरूप, वर्तमान सरकार तथा अतीत की अनेक सरकारों द्वारा, दुर्दशा में फंसी जनता को मुक्ति दिलाने के लिए जो प्रयास किये गये थे, वे प्रायः व्यर्थ हो गए। इसलिए एक लोकप्रिय सरकार को यह शोभा देता है कि वह केवल ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करे, जो उसकी आकांक्षा तथा अभिलाषाओं को निष्ठापूर्वक जनसमाज तक पहुंचा दे। तात्पर्य यह है कि यहां से आगे–विशेषतः इस कृषि–प्रधान देश में–ग्रामीण मानसिकता वाले व्यक्तियों को अधिक मात्रा में सरकारी नौकरियों में स्थान दिया जाए।

यदि सार्वजनिक सेवाओं में ग्रामीण क्षेत्रों से आये व्यक्तियों की संख्या बढ़ाई जाती है, तो केवल राज्य का प्रशासन ही वांछित भावना के अनुरूप न चलेगा, वरन् उसकी कार्यकुशलता भी बढ़ जायेगी। इससे उसको चारित्रिक दृढ़ता तथा दृष्टि भी मिलेगी, जो किसी अन्य स्रोत से प्राप्त नहीं हो सकती। इसका कारण यह है कि किसान–पुत्र जिस वातावरण में पलता है, उससे उसको दृढ़ मांसपेशियां, एक आन्तरिक स्थायित्व, चेतना की मजबूती और प्रशासन की क्षमता प्राप्त होती है। इनको प्राप्त करने का शुभावसर गैर–किसान–संतान अथवा शहरी नागरिक को नहीं मिलता। खेती एक ऐसा व्यवसाय है, जहां प्रकृति के साथ संघर्ष में एक किसान को धैर्य एवं अध्यवसाय के पाठ रोजाना पढ़ने पड़ते हैं, फलतः उसमें दृढ़ता तथा सहनशीलता उत्पन्न हो जाती है। इससे एक ऐसे चरित्र का निर्माण होता है, जो किसी अन्य व्यवसाय से नहीं हो सकता।

एक किसान–पुत्र में निश्चयों को मूर्त–रूप देने की शक्ति और दृढ़ता होती है, जिसका अभाव प्रायः गैर–किसान सन्तानों में देखने को मिलता है। किसान के बेटे का हाथ तथा दिल, विपत्ति के समय में कांपेगा नहीं, पर शहर के कोमल व्यक्ति डगमगा सकते हैं। किसान का बेटा अपने शहरी साथी ऑफिसर की समता में, अधिक साधारण, कम बनावटी एवं ऐश तथा आराम का कम अभ्यस्त होता है। अतः किसी आदेश के प्रसारण में ही नहीं, बल्कि उसको पूरा करने की सीमा तक उस पर विश्वास किया जा सकता है। वह धोखा देना नहीं जानता और न सफलतापूर्वक धोखा दे सकता है, क्योंकि उसका तथा उसके पिता का बचपन ज़मीन, पेड़–पौधों तथा पशुओं के साथ व्यतीत हआ था, जो कभी झूठ नहीं बोलते. जबकि एक गैर–कृषक तथा उसका बेटा अपनी जीविका–अर्जन के कार्य में, ऐसे लोगों के सम्पर्क में आता है, जो एक–दूसरे से आगे निकलने की स्पर्धा में झूठ बोलते हैं तथा छल–कपट का व्यवहार करते हैं। यह भी कहा

जा सकता है कि शहरी नागरिक की संतान की अपेक्षा किसान का बेटा भ्रष्टाचार के मार्ग पर कम बढ़ता है, क्योंकि उसके जीवन–निर्वाह का स्तर सामान्य होता है, उसके आराम का तरीका भी सहज है और उसका काम थोड़े से धन से चल जाता है। आराम तलब वातावरण में पले शहरी व्यक्ति को, जीवन–दिर्वाह के लिए अधिक धन की आवश्यकता होती है। किसी तर्क में जीतना कठिन कार्य हो सकता है, किन्तु सही आलोचना का जवाब 'अमेरिकन बिजनेस मैन्ज कमेटी ऑन एग्रीकल्चर' के विचार से दिया जा सकता है। इस नाम से ही ज्ञात होता है कि इस कमेटी में कोई किसान नहीं था। इस कमेटी का विचार इस प्रकार है–

> "सामाजिक दृष्टि से देहाती जीवन में वे अनेक क्षमताएं हैं, जो अन्य किसी से उपलब्ध नहीं हो सकतीं, सम्भवतः यह बात स्पष्ट रूप से प्रमाणित नहीं हुई कि देहात के वातावरण में विकसित मानव, शहरी वातावरण में विकसित व्यक्ति से अधिक अच्छा है, यद्यपि इस बात की सच्चाई में संदेह की गुंजाइश कम है।" (पृष्ठ १५२)

इसके लिए, मैं एक अन्य निर्दोष प्रमाण–पत्र प्रस्तुत करना चाहता हूं– लंदन में बढ़ती हुई आबादी का अध्ययन करते हुए सर हरवर्ट लैवल्यू स्मिथ ने आधी शती से पहले कहा था, देहात से शहर में आने वाला व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से विशाल होता है और उनकी नितांत कीमती मानसिक योग्यताओं का अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि विशेष प्रतिष्ठा तथा विशेष दायित्वपूर्ण नौकरियों के लिए लंदन में देहाती क्षेत्र से आया व्यक्ति अधिक पसन्द किया जाता है।

"लंदन को सशक्त तथा मजबूत देहात से उमड़ने वाला जनसमाज बनाए हुए है। बड़े–बड़े शहरों में, जीवन की विषम परिस्थितियों का परिणाम है कि मांसल शक्ति तथा क्षमता क्षीण हो जाती है। लंदन–निवासियों की दूसरी पीढी है कि कम–से–कम वे लोग, जो वर्ग–संघर्ष में विश्वास करते हैं और जिन्होंने हमेशा किसानों तथा मजदूरों के हितों का समर्थन उनके शोषकों के विरोध में किया है, उनको इस समेत ऐसे सभी कदमों का समर्थन करना चाहिए जो जनता के हितों की रक्षा करते हैं। जन्म के स्थान पर पेशे पर बल देने से, आधुनिक शक्तियों के विकास को आधार मिलता है। समाजवादी में संदेह करने वालों को विश्वास दिलाने के लिए मैं सोवियत संघ का उदाहरण दे सकता हूं। वहां जून १९३१ तक बुद्धि जीवियों–इंजीनियर्स, डॉक्टर्स, कालिज–प्रोफेसर, स्कूल–अध्यापक, जो सरकारी सेवाओं में थे और जिनको नागरिकता भी प्राप्त थी, उनके बच्चों के विश्वविद्यालयों में दाखिले, किसानों तथा मिल–मजदूरों के बालकों के

दाखिले हो जाने के बाद ही होते थे।

न तो यह लाभकर होगा, न सामयिक और न न्यायोचित कि सरकारी प्रशासन पर गैर–कृषक समुदाय के सदस्यों तथा शहरी लोगों का एकाधिकार हो। प्रजातन्त्र का तात्पर्य हर स्थान पर आम लोगों की सरकार का होना होता है, यह कुछ वंशानुगत शासक जातियों तथा वर्गों का अधिकार नहीं। इसलिए विभिन्न आर्थिक और सामाजिक पेशों वाली जातियों के दावों को समानता तथा बराबरी की कसौटी के आधार पर संगत बनाना होगा, अन्यथा इनमें कटुता बनी रहेगी और वह निरन्तर विकसित होती रहेगी।

मेरे आलोचक यह चोट कर सकते हैं कि जब तुम हलवाहों के लिए सरकारी नौकरियों में आरक्षण का प्रस्ताव करते हो तो बढ़ई तथा बुनकर आदि के लिए मौन क्यों हो? यह आलोचना हास्यास्पद है। प्रशासकीय सुविधा का कोई सिद्धांत न तो शाश्वत होता है और न हर प्रकार के तथ्य तथा परिस्थितियों पर लागू होने वाला होता है। ऐसी कोई बात नहीं होती, जिसकी यदि खींचतान की जाए तो वह हास्यास्पद न बन जाए? और यहां देहात तथा कृषक के लिए आरक्षण के जिस सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया, वह इस आम सिद्धांत का अपवाद नहीं है। यथार्थ में किसान ही जन–समाज के प्रतीक हैं, ऊपर वर्णित पेशों के व्यक्ति नहीं। सच्चाई यह है कि सम्पत्तिशाली तथा उच्च–वर्ग के लोगों से सरकार भरी है। जैसा कि स्पष्ट दीख पड़ता है, किसान जितना पाने का अधिकारी है, मैं उससे अधिक का दावा नहीं कर रहा हूं, यदि आरक्षण के दावे को स्वीकार कर लिया जाए, तो इससे किसी की हानि नहीं होती। बाकी के बचे ५० प्रतिशत में, अन्य लोगों को अपना मौका तलाश करना चाहिए। (मैं यह कहूंगा कि कृषि तथा को–ऑपरेटिव विभागों का नियंत्रण शुद्ध रूप से किसानों की संतान के हाथ में होना चाहिए)। इस सम्बन्ध में, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यदि इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जाता है, तो उससे भविष्य में लोगों का चयन प्रभावित होता है और नौकरियों के ढांचे में पचास तथा साठ प्रतिशत का अनुपात प्राप्त करने में एक पीढ़ी की खपत हो सकती है।

सिद्धांतशास्त्री यह तर्क कर सकते हैं कि जीविका के पेशे योग्यता, केवल योग्यता के लिए खुले हों। किसी वर्ग के पक्ष में आरक्षण से योग्यता पर सदैव प्रहार होता है, क्योंकि इस प्रकार योग्यतम व्यक्तियों की भर्ती अवरुद्ध हो सकती है और प्रजातंत्र का यह निचोड़ है कि समस्त लोगों के साथ पूर्ण समता का व्यवहार किया जाए। इसका हमारे पास यही उत्तर है कि योग्यता केवल शिक्षा तथा किताबी ज्ञान में ही निहित नहीं होती

और व्यक्ति की श्रेष्ठता अथवा हीनता का मापदंड उस कार्य की सम्पन्नता होना चाहिए, जो उसे पूरा करने के लिए सौंपा गया है, किसी समान स्तर वाले प्रश्न–पत्र से हल किए गए प्रश्नों के उत्तर नहीं। इसके साथ ही सार्वजनिक सेवाओं के मामले में सभी को समान, उस अवस्था में समझना चाहिए, जबकि समाज या लोकतंत्र वाली सरकार ने प्रगति की दिशा तथा शिक्षा में सबको समान सुविधाएं प्रदान कर दी हों। यह घोर अन्याय होगा कि पहले तो विशाल जनसमूह को विकास तथा ज्ञान से वंचित रखा जाए और फिर अयोग्यता के बहाने से, उसके सरकारी सेवाओं से बाहर रहने को उचित ठहराया जाए।

समान शैक्षिक स्तर की बात उसी हालत से न्यायोचित हो सकती है जब सबको समान सुविधाएं प्रदान की गई हों। योग्यता के साथ चिपके रहने वालों को यह समझ लेना चाहिए कि जिसे 'शैक्षिक योग्यता' कहा जाता है, मैं उसकी पूर्ण उपेक्षा का समर्थन नहीं करता, केवल न्यूनतम शैक्षिक योग्यता रखने वाले कृषकों को नौकरियों में स्थान दिया जाए। यहां पर यह बताना अप्रासंगिक न होगा कि कुछ क्षेत्रों में यह विश्वास घर कर गया है कि आवश्यक शैक्षिक योग्यताओं से सम्पन्न ग्रामीण इलाकों के युवक भी नौकरियों के लिए उपलब्ध न हो सकेंगे। पहले तो यह विश्वास निराधार है, दूसरे यदि ऐसे युवक न मिलें तो उन स्थानों को अन्यों द्वारा भर देना चाहिए। मैं यह कह सकता हूं कि किसान–वर्ग के योग्य उम्मीदवारों के अभाव का तर्क, उत्तर प्रदेश के पूर्वी तथा मध्य भाग से परिचित व्यक्तियों द्वारा ही किया जा सकता है, जहां यथार्थ में किसान आर्थिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ है, जहां सीधे स्वर्ग से उतरे ऊंची जाति के हिन्दुओं द्वारा शारीरिक श्रम को घृणाभरी दृष्टि से देखा जाता है। यही कारण है कि यहां खेत जोतने वाला व्यक्ति, पश्चिमी भाग की अपेक्षा, द्वितीय श्रेणी के लोगों से भी हीन माना जाता है।

किसानों के लिए नौकरियों में आरक्षण के सवाल पर एक विरोध यह किया जा सकता है कि कुछ मामलों में यह प्रस्ताव अव्यावहारिक इस अर्थ में है कि बहुत से संदर्भो में यह निश्चय नितांत कठिन होगा कि विशिष्ट प्रत्याशी किसान की समता में निरन्तर काम करने की उसकी क्षमता कम है और तीसरी पीढ़ी दूसरी की अपेक्षा हीन है।"

एक दूसरा तर्क भी है। ज़मीन जोतने वाला ही कर–भार को ढोता है, क्योंकि सम्पति का वह एकमात्र उत्पादक है, अस्तु, समस्त कर अंततः उसके सिर पर ही पड़ते हैं। जहां तक सीधे करों का प्रश्न है, उसे भूमि–राजस्व, लगान तथा आबपाशी–कर राज्य सरकार को देना पड़ता

है। उक्त राशि के भुगतान होने के बाद, उस पर कुछ फालतू नहीं छोड़ा जाता और उसके पास ज़मीन केवल पांच बीघा तक ही रहती है। दूसरी ओर गैर–किसान को केन्द्रीय सरकार को आयकर देना पड़ता है, बशर्ते कि उसकी आमदनी २०००० रु० प्रतिवर्ष से अधिक हो। दोनों के भार का अन्तर इतना प्रामाणिक है कि उसके विश्लेषण की आवश्यकता नहीं है। यह घोर अन्याय उस समय अधिक बढ़ जाता है, जिस समय यह बात सामने आती है कि अन्ततः किसान से वसूले धन का आधिक हिस्सा, वेतन के रूप में, उनकी जेबों में चला जाता है, जो उसकी अपनी सन्तान नहीं हैं। इस प्रकार, एक रूप से किसानों के खेतों से चूसा गया पानी उसके गांव की ओर न जाकर उपजाऊ वर्षा के रूप में शहरों की ओर चला जाता है। इस स्थिति में यह दावा करना क्या बेतुका माना जायेगा कि किसानों से करों के रूप में वसूला गया पैसा, उनके बेटों के वेतन के रूप में, उनको लौटा देना चाहिए।

सरकारी नौकरियों में किसान–सन्तानों के आरक्षण के प्रश्न का औचित्य इस बात से भी न्यायोचित प्रतीत होता है कि वे शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं, इसके लिए वे स्वयं उत्तरदायी नहीं हैं, बल्कि राज्य तथा समाज उत्तरदायी है। प्राइमरी स्कूलों के अतिरिक्त सभी शिक्षा–संस्थाएं शहरों में होती हैं। इन संस्थाओं में गैर–कानूनी फीसें ली जाती हैं और इसके अलावा शहरों में भोजन तथा आवास की व्यवस्था बड़ी खर्चीली होती है, जो किसी प्रकार गुजारा करने वाले ग्रामीण किसान की आर्थिक क्षमता से परे होती है। यद्यपि, माध्यमिक स्तर तक शिक्षा निःशुल्क तथा राजकीय दायित्व होनी चाहिए। इन संस्थाओं में भी देहात के छात्रों के दाखिले उसी हालत में होते हैं, जब पहले शहर से आये बालकों के हो जाते हैं। यहां तक कि कानपुर का कृषि–कॉलिज, जिसकी स्थापना ही ग्रामीण तथा किसान–सन्तानों के हितों की रक्षा के लिए की गयी थी, इस बात का अपवाद नहीं है। ऐसा क्यों है? और इससे हमको आरक्षण के पक्ष में एक तर्क और प्राप्त हो जाता है। एक बात और उल्लेखनीय है, ग्रामीण बालकों को परीक्षा में प्रतिशत प्रदान करने की शक्ति भी १०० में से ९० फीसदी तक गैर–कृषक तथा शहरी व्यक्तियों के हाथ में होती है। तमाम महत्त्वपूर्ण स्थान उन लोगों की मुट्ठी में हैं, जिनका खेतिहर किसानों के साथ न कोई सम्बन्ध है, न उनमें कोई रुचि। उदारता का प्रारम्भ सदैव ही घर से होता आया है। जिनके हाथ में किसी के साथ पक्षपात करने की क्षमता है, वे अपने रक्त के सम्बन्धियों अथवा आर्थिक हितों से सम्बद्ध व्यक्तियों के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करेंगे। परिणामतः किसान–पुत्र के पास नौकरी पाने के लिए इस प्रकार के सम्बन्धों का अभाव है, यह सुविधा

अन्यों को प्राप्त है। प्रायः यह देखा गया है कि कम योग्य व्यक्ति को नौकरी मिल जाती है, क्योंकि ग्रामीण की सन्तान किसी ऊंचे स्थान पर बैठे व्यक्ति की सिफारिश पाने में असमर्थ रहती है। अतः खुली प्रतियोगिता की यह पद्धति, कई मामलों में, सार्थक नहीं है। इसका सत्य के साथ कोई सम्बन्ध भी नहीं है, अतः इसको समाप्त हो जाना चाहिए।

इन्हीं कारणों की वजह से मैं प्रदेश के प्रशासन में उस वर्ग के आरक्षण की बात करता हूं, जिसको अभी तक अपने उचित अनुपात से बहुत कम भाग प्राप्त हुआ है और जिसका मसला अभी तक उपेक्षित रहा है।

जो लोग इस प्रस्ताव के विरोधी हैं, वे यह कह सकते हैं कि कृषक–वर्ग परम्परा से ही कुछ निश्चित जातियों से भरा हुआ है, अतः उनके आरक्षण का अर्थ कुछ जातियों के लिए आरक्षण होना है और यह एक रूप में, साम्प्रदायिक कार्य होगा, जिसको बढ़ाने की अपेक्षा घटाना चाहिए। यथार्थ में, इस प्रस्ताव को साम्प्रदायिक कहना लोगों को अंधकार में रखना है। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व यथार्थ में धर्म तथा जन्म के आधार पर निश्चित हुई जाति पर आधारित होता है। यदि कोई चाहे तो इसको व्यावसायिक, वृत्तिमूलक अथवा पेशापरक प्रतिनिधित्व पुकार सकता है, किन्तु कल्पना के किसी भी छोर तक इसको साम्प्रदायिक नहीं कहा जा सकता। जहां तक मनुष्य एक इन्सान है, वहां तक एक व्यक्ति में दूसरे से अन्तर अवश्य रहेगा। विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में संलग्न व्यक्तियों में अन्तर का होना मानव–समाज का स्वाभाविक विकास है। मानव समाज को एक निर्जीव समता की स्थिति में नहीं लाया जा सकता और ऐसी पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास भी वांछनीय नहीं है। इसका निर्णय हमको करना है कि क्या हम अपने समाज की संरचना अथवा अपने प्रदेश या राष्ट्र के प्रशासन में धर्म अथवा जाति को, आदमी तथा आदमी अथवा उसके कार्य एवं आर्थिक हितों के बीच, निर्णायक एवं विशिष्ट आधार मानने के लिए तैयार हैं अथवा नहीं? जन्म पर आधारित जाति का युग समाप्त हो गया है, इसका अन्त हो ही जाना चाहिए। प्रारम्भ में भी जाति का निश्चय कार्य या पेशे के आधार पर होता था, बहुत बाद में आकर वह रूढिबद्धता को प्राप्त हुई और जन्म के साथ सीमित हो गई। यह सामान्य विचार का विषय है कि लोग अपनी वंशानुगत जाति तथा धर्म के बिल्ले के वावजूद, यदि समान जीवन परिस्थितियों वाले वातावरण में पलते हैं, तो समान रूप से आचरण करते हैं और अपने समान आर्थिक सम्बन्धों के कारण विशेष व्यवसाय के अनुरूप एक–सी मनोवृत्ति विकसित कर लेते हैं। मेरा विश्वास का पुत्र है अथवा नहीं? क्योंकि अनेक लोग, जो शहरों में रहते हैं या कोई व्यवसाय करते हैं, पटवारी के रजिस्टर

में कृषक लिखे हुए हैं। इस एतराज पर मेरा उत्तर इस प्रकार है– जनगणना के समय जिन लोगों ने अपना सहायक–पेशा खेती लिखाया है, वे आठ प्रतिशत से अधिक नहीं हैं, दूसरे चयन–अधिकारियों की सुविधा के लिए नियम बनाए जा सकते हैं और अनुभव के आधार पर उनमें संशोधन भी किया जा सकता है।

दुनिया के हर देश के राजनीतिज्ञों को अपने देश के प्रशासन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है और उनका संतोषजनक समाधान भी कर लिया गया है। पंजाब की सरकार के सामने, जिस समय सन् १९३८ में उसने सरकारी नौकरियों में किसानों के लिए आठ प्रतिशत का आरक्षण किया था, यह कठिन समस्या थी कि किसी व्यक्ति की जाति तथा धर्म के आलोक में उसके किसान होने का निश्चय कैसे किया जाए। मुझे आशा है कि संयुक्त–प्रदेश की सरकार वह भूल नहीं दुहरायेगी और किसानों के साथ न्याय करते हुए राष्ट्रीय एकता की भावना के प्रकाश में, इस समस्या का समाधान खोज लेगी।

मैं जानता हूं कि देहाती वर्ग, शहरी समाज और इस प्राचीन देश के अन्य सभी वर्ग, अच्छाई तथा बुराई के कामों में, सभी एक साथ हैं और केवल अपराध की भावना उनमें ईर्ष्या पैदा करती है, लेकिन देहात तथा किसान–समाज, जो हमारे पूर्वजों के बलवान स्वास्थ्य का प्रतीक है और राष्ट्र की युवा–शक्ति को जन्म देने वाला है, को किसी भी बहाने के आधार पर देश के प्रशासन में समुचित भाग एवं अन्य शक्ति और अधिकारों से वंचित कर देना, मैं असल में एक बहुत बड़ा अपराध मानता हूं। इसका कारण यह है कि सार्वजनिक–सेवाएं जन–समाज के लाखों व्यक्तियों की समस्याओं का समाधान तो करती ही हैं, साथ ही ये राजनीतिक शक्ति तथा प्रभुत्व के अस्त्र भी बनती हैं। मेरी यह बात राष्ट्रीयता के मार्ग की बाधा नहीं, वरन् उसको अधिक बढ़ाने वाली है। तमाम व्यक्तियों को यह समझ लेना चाहिए कि प्रशासनतंत्र नगर निवासियों अथवा गैर–कृषक–समाज के लिए एक किला एवं सुरक्षित स्थान नहीं है और जीवन की अन्य अच्छी चीजें तथा शिक्षा केवल कुछ लोगों के एकाधिकार का क्षेत्र नहीं हैं, बल्कि वह ज़मीन से पैदा हुए प्रत्येक व्यक्ति की मिली–जुली विरासत हैं।

यह भी हो सकता है कि जबान के तेज, पक्के लोकतंत्रवादी अथवा दूसरे लोग, इस सिद्धांत के विरोध में कोई और तुरप चल दें। मैं केवल यह कह सकता हूं कि किसानों के न्यायसंगत दावे बहुत दिनों से सम्पत्ति शाली तथा शिक्षित वर्ग, जो विशेष अधिकार प्राप्त तथा गैर–कृषक है, के हितों के नीचे कुचले जाते रहे हैं। यह भी सत्य है कि किसान ही प्रत्येक व्यक्ति के हितों की रक्षा करता है, अपने कन्धों पर प्रांतीय प्रशासन

के समस्त भार को वहन करता है। उन सभी लोगों को, जो इस प्रदेश के भाग्य–विधान में थोड़ा भी अधिकार रखते हैं और जिनके दिलों में किसान–वर्ग के हितों के प्रति लगाव है, अपने प्रभाव का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए कि सार्वजनिक–सेवाओं में चयन के मामले में किसान के साथ न्याय हो। 'ह्वीट मार्केटिंग रिपोर्ट' का लेखक एक अन्य सम्बन्ध में लिखता है, "इस प्रकार के कदम के अभाव में, किसानों के हितों के पक्ष का कथन अविश्वास तथा संदेह की दृष्टि से देखा जा सकता है।" 'इण्डियन पीजेंट्स' के लेखक डॉ० डी० एन० गंगोली, जो 'रॉयल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर' के सदस्य थे, उसी स्वर में शिकायत करते हैं–

> "इस देश की राजनीति पर शहरी वर्ग का आधिपत्य है। देश में किसान की आवाज नहीं सुनी जाती, यद्यपि वह भारतीय जनता के ७५ प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व करता है। किसान के प्रति प्रत्येक व्यक्ति शाब्दिक सहानुभूति दिखाता है। देहाती इलाके से आए कांग्रेस–जनों के एक भाग के अतिरिक्त कोई भी उसके हितों के विषय में चिंतित नहीं है।"

इस कथन से, मेरे प्रस्ताव को बल मिलता है और यह भी सिद्ध होता है कि मैंने एकदम कोई नयी तथा आश्चर्यजनक बात नहीं कही है। कांग्रेस सरकार ने अपने अल्पकालीन अधिकार के युग में कुछ विभागों में, दस में से एक स्थान, कुछ किसानों के लिए आरक्षित करने की बात स्वीकार की थी। यह आरक्षण बहुत थोड़ा है, दूसरे इसका दुरुपयोग होने के कारण प्रशासन पर कोई प्रभाव स्थापित नहीं कर पाया। यदि इसको घिसा–पिटा नहीं रखना है, यदि वह वास्तव में किसानों के हितों के लिए है, जिसकी वजह से हमारे नेताओं ने इस दिशा में सोचने का प्रयास किया था, तो मैं इस सिद्धांत के उत्कर्ष की वकालत करता हूँ।

इस प्रसंग का अन्त करते हुए, इतना कहूंगा कि मुख्यमन्त्री पं० गोविन्द वल्लभ पंत ने २९ जनवरी १९४७ को लखनऊ में विभागीय कार्यालयों की 'डवलपमेंट कॉन्फ्रेंस' का उद्घाटन करते हुए इस बात पर बल दिया था कि मनुष्य के कार्यों में मनोवैज्ञानिक तत्त्व महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। हमारे राष्ट्र का निर्माण करने वाले विभागों की असफलता पर बोलते हुए आपने कहा था

> "हमारे विभाग प्रायः सीलबन्द हैं। प्रत्येक विभाग बनावटी वातावरण में काम कर रहा है। गरीब और गंवार कहलाने वाला किसान परस्पर विरोधाभासों से भरी अपीलों पर किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा है। मशीनवत् ये अपीलें अनेक लोगों द्वारा प्रसारित की गई हैं। इनमें से एक व्यक्ति

भी उसके जीवन में हाथ बंटाने वाला तथा वास्तव में उसकी सेवा की भावना से अनुप्रेरित दिखाई नहीं पड़ता। आपको उसे विश्वास दिलाना पड़ेगा कि आप तथा मैं यथार्थ में उसके शुभचिंतक हैं और उसकी सेवा करने का विचार रखते हैं। जब तक आप यह काम नहीं कर लेते, तब तक हमारी समस्त अपीलें व्यर्थ जाएंगी, इनके पक्ष में कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी। मुझे इस कथन के लिए क्षमा करेंगे कि अपने इन सफेद कॉलर, पैंट तथा हैट के साथ, आप सहज तथा स्वाभाविक अपील नहीं कर सकते। मैं व्यक्तिगत रूप से सोचता हूं कि हमारे ऑफिसरों को गांवों की ओर जाना चाहिए और डाकबंगलों में ठहरने की बजाए किसानों के परिवार के साथ रुकना चाहिए। इससे उनको एक सीमा तक तकलीफें तथा असुविधाएं होंगी, किन्तु इससे उनका काम आसान होगा। यह एक बहुत मामूली, और छोटी बात है, किन्तु हम लोग यह जानने की कोशिश नहीं करते कि ये मामूली बातें एक व्यक्ति तथा समुदाय को अपनी हल न होने वाली समस्याओं के समाधान की दिशा में कितना प्रभावित करती हैं। आप एक स्विच दबाते हैं और देखते हैं कि मीलों तक रोशनी फैल जाती है, यहां भी यही बात है। यदि आप इस स्विच को ठीक तरह से प्रयोग कर लें, तो आप देखेंगे कि प्रकाश चारों ओर फैल रहा है और आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि आप कितनी आसानी के साथ उसकी बुद्धि तथा कल्पना को प्रभावित करने में समर्थ हो रहे हैं।"

मुख्यमंत्री जी ने ठीक स्थान पर इशारा कर दिया है। जिस बीमारी से हमारी सेवाएं रोगग्रस्त हैं, वह भली प्रकार पहचान ली गई है। लेकिन मैं सम्मानपूर्वक यह कहने का साहस करता हूं कि हमारे आफिसरों पर उनकी अपील का कोई प्रभाव नहीं होगा, क्योंकि वे जिस वर्ग से आए हैं अथवा जिसका पालन करते हैं और जिस वातावरण में रहते हैं, वह किसानों तथा देहातियों के विपरीत है। केवल वे ऑफिसर, जो किसानों द्वारा लपेटे जाने वाले कपड़ों में पले हैं, किसान के जीवन का अंग बन सकते हैं और उनके पास रात को ठहर सकते हैं। केवल वे अधिकारी, जो आर्थिक सूत्रों, सांस्कृतिक सम्बंधों और मनोवैज्ञानिक नजदीकीपन में उनके साथ हैं, वे ही ठीक सूत्रों को पकड़ सकते हैं और उस स्विच को दबा सकते हैं, जो उसके जीवन को आलोकित कर सकता है और उस अंधकार का निवारण कर सकता है, जिसने आज उनको चारों ओर से घेर लिया है। एक ग्रामीण तथा किसान के दिल को केवल वही जीत सकता है, जिसकी प्रतिक्रिया वस्तुओं के प्रति किसान के समान होती है,

कोई दूसरा नहीं। इसलिए हमको एक कदम और आगे जाना पड़ेगा। हमें उपदेश देने की अपेक्षा, सार्वजनिक सेवाओं की नियुक्तियों की पद्धति को बदलना पड़ेगा।

चौधरी चरण सिंह द्वारा रचित कृतियां

शिष्टाचार, १९४१. (२०१ पृष्ट)

हाउ टू एबोलिश जमींदारीः ह्विच एल्टरनेटिव सिस्टम टू एडाप्ट। (ज़मींदारी उन्मूलन कैसे करें: किस वैकल्पिक प्रणाली को अपनाएं) १९४७. इलाहाबादः सुपरिन्टेन्डेन्ट प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, संयुक्त प्रांत।

एबोलिशन ऑफ ज़मींदारीः टू अल्टरनेटिव्ज। (जमींदारी उन्मूलनः दो विकल्प) १९४७. किताबिस्तान, इलाहाबाद. (२६३ पृष्ट)

एबोलिशन ऑफ जमींदारी इन यू० पी०: क्रिटिक अंसरड। (उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलनः आलोचकों को जवाब) १९४९. इलाहाबादः सुपरिन्टेन्डेन्ट प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, संयुक्त प्रांत।

व्हितहर कोआपरेटिव फार्मिंग? (सामूहिक खेती की दिशा?) १९५६. इलाहाबादः सुपरिन्टेन्डेन्ट प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, उत्तर प्रदेश।

एग्रेरियन रिवोल्यूशन इन उत्तर प्रदेश। (उत्तर प्रदेश में कृषि क्रांति) १९५७. प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, गवर्नमेंट ऑफ उत्तर प्रदेश १९५८ लखनऊ, सुपरिन्टेन्डेन्ट, प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, उत्तर प्रदेश। (६६ पृष्ट)

जॉइंट फार्मिंग एक्स–रैडः द प्रॉब्लम एंड इट्स सोल्यूशन। (संयुक्त खेतीः समस्या और समाधान) १९५९. किताबिस्तान, इलाहाबाद. (३२२ पृष्ट)

इण्डियाज पॉवर्टी एण्ड इट्स सोल्यूशन। (भारत की गरीबी और उसका समाधान) १९६४. एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई। (५२७ पृष्ट)

इण्डियन इकोनॉमिक पॉलिसीः दि गांधियन ब्लूप्रिंट। (भारत की अर्थनीतिः एक गांधीवादी रूपरेखा) १९७८. विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। (१२७ पृष्ट)

इकोनॉमिक नाइटमेयर ऑफ इण्डियाः इट्स कॉज़ एण्ड क्योर। (भारत की भयावह आर्थिक स्तिथिः कारन एवं निदान) १९८१. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। (५९८ पृष्ट)

लैण्ड रिफॉर्म्स इन यू० पी० एण्ड दि कुलक्स। (उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार एवं कुलक वर्ग) १९८६. विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। (२२० पृष्ट)

'विशिष्ट रचनाएंः चौधरी चरण सिंह' भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री चरण सिंह द्वारा १९३३ और १९८५ के बीच लिखित २२ महत्वपूर्ण लेखों और भाषणों का संग्रह है। इस पुस्तक के अध्ययन से आज का पाठक वर्ग जान सकेगा कि मौजूदा समय की चुनौतियां न तो नई हैं और न ही समाधानहीन। इनसे निपटने के लिए एक मन–सोच अथवा जिगरा चाहिए, जो निश्चय ही धरा–पुत्र चरण सिंह में था। उनका लेखन उस प्रकाशस्तंभ की तरह है जो समुद्र में भटके हुए जहाजों को किनारे तक आने का रास्ता दिखाता है। उनके लेखन के आलोक में हम मौजूदा चुनौतियों को सही परिप्रेक्ष्य में न केवल समझ सकते हैं अपितु उनका समाधान भी पा सकते हैं। इन लेखों में उनकी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि के दर्शन होते हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से इन लेखों को सामाजिक लेखन, आर्थिक लेखन, राजनीतिक लेखन एवं उपसंहार – चार खण्डों में विभाजित किया गया है।

चौधरी चरण सिंह की अध्यात्मिक अंतश्चेतना और राजनीतिक मेधा महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं महात्मा गांधी से अनुप्रेरित रही, तो सरदार पटेल उनके नायक रहे। इन विभूतियों पर चौधरी साहब ने अपने विचार लेखों में प्रस्तुत किये हैं। जाति–प्रथा, आरक्षण, जनसंख्या नियंत्रण, राष्ट्रभाषा जैसे सामाजिक मुद्दों के साथ ही शिष्टाचार जैसे विरल विषय पर भी दो लेख **खण्ड एकः सामाजिक लेखन** में दिये गये हैं।

चौधरी साहब भारत की उन्नति का मूल आधार कृषि, हथकरघा और ग्रामीण भारत को मानते थे। उनकी दृष्टि में ग्रामीण भारत ही वह नियामक तत्व रहा जिसे प्रमुखता देकर देश को आर्थिक रूप से सशक्त बनाया जा सकता है, साथ ही बेरोजगारी जैसी विकट समस्या को भी दूर किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश में भूमि सम्बंधी सुधारों और जमींदारी समाप्त करने को लेकर चौधरी चरण सिंह पर धनी किसानों के पक्षधर होने के आरोप विरोधियों ने लगाये। उनका उन्होंने बेहद तार्किक ढंग से उत्तर दिया है। गांव–किसान और खेती के प्रति उपेक्षापूर्ण नीतियां एवं काले धन की समस्या जैसे तथा उपरोक्त विषयों पर केन्द्रित लेख **खण्ड दोः आर्थिक लेखन** के अन्तर्गत दिये गये हैं।

खण्ड तीनः राजनीतिक लेखन के अन्तर्गत भारत की लम्बी गुलामी के मूल कारणों का विश्लेषण, गांधी–चिंतन, देश में पहली गैर–कांग्रेसी जनता पार्टी की सरकार की आधारभूत नीतियां, देश विख्यात माया त्यागी कांड का समाजशास्त्रीय विश्लेषण, भाषा आधारित राज्यों के खतरे आदि मुद्दों के अलावा उनके नायक सरदार पटेल की स्मृति पर आधारित लेख हैं। इसी खण्ड में चौधरी साहब के ऐतिहासिक महत्व के दो भाषण भी संकलित हैं, जो लोकशाही पर संकट और राष्ट्रीय विघटन के खतरों के प्रति सचेत करते हैं।

अंतिम **खण्ड चारः उपसंहार** है, जिसमें चौधरी साहब ने राजनीति, समाज नीति और देश से सम्बंधित अधिकतर मुद्दों पर संक्षेप में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

Charan Singh Archives
www.charansingh.org

मूल्य ₹६६